IJAER/ May-June 2023/Volume-12/Issue-3 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

प्राचीन भारत में मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास

प्रीती वर्मा

अंडरग्रेजुएट स्टूडेंट , बैचलर ऑफ़ एजुकेशन

रुंगटा कॉलेज ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी

शोध निर्देशक – प्रतिभा ठाकरे , शिक्षा विभाग प्रमुख

रुंगटा कॉलेज ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी

शोध सार

भारतीय संस्कृति और भूमिका दुनिया भर में उच्च सम्मान प्राप्त करने के लिए विख्यात रही है। इसमें मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है, जो प्राचीन भारतीय सभ्यता की विशिष्टता को प्रकट करती है। मूर्तिकला, भारतीय साहित्य, धर्म और समाज की संजातीय अभिव्यक्ति का माध्यम बनी है। इस अनुसंधान पत्र में हम प्राचीन भारत में मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों के विकास पर प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। भारतीय कला और संस्कृति ने विभिन्न युगों में विशेष रूप से मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों को बढ़ावा दिया है। इन प्रवृत्तियों ने समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलुओं का प्रतिष्ठान किया है। यह अद्वितीय कला रूप प्राप्त करने के लिए प्राचीन भारतीय कला विद्या की विशेषता है। हम विभिन्न कालांतरों में मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों के परिवर्तन और प्रगति को विश्लेषण करेंगे, जैसे वैदिक काल, मौर्य, गुप्त, पल्लव, चोल, राष्ट्रकूट, चालुक्य, गंधार, गुजराती आदि। हम इस अद्वितीय कला के प्रगतिशील भूमिकाओं, शैली एवं तकनीकों, उपयोगिता और मूर्तिकला की साहित्यिक और धार्मिक पहचानों को विश्लेषित करेंगे। इस शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय सभ्यता में मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों के विकास को विस्तार से अध्ययन करना है। हम प्राचीन कलाकारों के द्वारा इस कला की महत्त्वपूर्णता को समझेंगे और उनके शिल्पी दक्षता और रचनात्मकता को मान्यता देंगे। इसके साथ ही, हम प्राचीन भारतीय समाज के राजनीतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मान्यताओं को समझने का प्रयास करें

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय कला की प्रमुख विधा के रूप में मूर्ति निर्माण कला का विषेश स्थान सिन्धुघाटी सभ्यता से ही देखने को मिलता है। इस कालखण्ड में बड़ी संख्या में मिट्टी की मूर्तियों का निर्माण किया गया एवं उनमें

विविध अलंकरणों को विशेष रूप से प्रयुक्त किया गया। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय मूर्ति निर्माण कला सैन्धव सभ्यता के समय से विविध अलंकरण प्रधान रही। सिन्धु सभ्यता में मुद्राओं तथा मृद्भांडों पर प्राप्त लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके हैं। परन्तु देवी-देवताओं, पशु , पक्षियों, स्तम्भों एवं प्रतीक चिन्हों से यह अनुमान होता है कि उस समय में मूर्ति पूजा की परम्परा थी।' पूजा करने से पूर्व संभवतः स्नान भी आवश्यक माना जाता था। मोहनजोदड़ों के इस स्नानगार से यह अनुमान सिद्ध होता है। सिन्धु-उपत्यका में पाषण काल का विकास मूर्तिकला का विकास संभावित जानकारी में सहायता प्रदान करता है। सभ्यता के क्षेत्र से मूर्तियाँ प्राप्त हुईं हैं। साथ ही हड़प्पा में टीले की खुदाई से दो छोटी मूर्तियाँ मिली हैं। इन मूर्तियों का केवल मध्य भाग ही सुरक्षित रहा है। मूर्तिकला के विकास के उत्कृष्ट नमूनों में एक मूर्ति का उल्लेख किया जाना आवश्यक है। इसका कायभाग एवं मस्तिष्क का भाग ही सुरक्षित है। इस मूर्ति को उत्तरीय ओढ़े हुये दिखाया गया है। इस पर त्रिफुलिया का अलंकरण हैं। उसमें सिन्दूर रंग भर कर शोभा को बढ़ाया जाता था।' हड़प्पा के अनुरूप सिन्धु घाटी को भी त्रिफुलिया का प्रयोग सेलखड़ी की या उसके मसाले से बनाई गयीं गुरियों पर मिला है। सिर पर सावधानी से काढ़ी गई पटियाँ सामने की ओर पहने हुए 'पात' से जमाई जाती थीं। इस मूर्ति के नेत्र लम्बे, कम चौड़े और अधमुंदे से ही हैं। यद्यपि उसका ललाट छोटा एवं पीछे की ओर ढलुआँ सा दिखाई पड़ता है। सिन्धु घाटी में प्राप्त कुछ दूसरे पाशाण मस्तिश्कों से विविध लक्षण प्राप्त होते हैं। जिनमें आँखों की पच्चीकारी है तथा अन्य शारीरिक लक्षणों को दिखाया गया है।

हड़प्पा में उत्खनन में दो मूर्तियों के रूंड मिले हैं। जिनसे ज्ञात होता है कि हड़प्पा के शिल्पी भी कितनी उत्कृष्ट मूर्तियों को बनाते थे। इन मूर्तियों की सजीव ढलाई का कार्य सशक्त है। इनके सिर, हाथ तथा पैर टूटी अवस्था में हैं। एक लालसा तथा दूसरे धुमैले रंग के पत्थर की मूर्ति हैं। एक मूर्ति सामने की ओर कुछ देख रही प्रतीत होती है। इस मूर्ति में उरोभाग एवं पीछे के भाग की ढलाई बड़ी आकर्शक है। उदर का निचला भाग कुछ भारी सा है। गर्दन के ऊपर, कंधों के निचले हिस्सों और जंघा के नीचे इस मूर्ति में छेद हैं। इनमें ये अनेक अवयवों को मूलतः: अलग पत्थर के टुकड़ों को बनाकर जोड़ा गया था। धुमैले रंग के पाषण की बनी दूसरी मूर्ति नृत्य की मुद्रा में हैं। इसका अधोभाग अलग से बैठाया गया था। भुजाएँ तथा पैर भी एक से अधिक भागों में अलग से जोड़े गए थे। इस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों का उतार-चढ़ाव एवं भारी नितम्बों का भाग यह दर्षाता है कि यह स्त्री मूर्ति ही है।' मोहनजोदड़ों से मिली एक नर्तकी की मूर्ति 45 इंच की है। यह अत्यन्त आकर्शक तथा भावों से युक्त है। इस मूर्ति में पैरों से निचला हिस्सा टूटा हुआ है। दाहिना हस्त लताहस्त मुद्रा में है। बाहुओं में कटकावली अथवा बंगड़ी भरी गई हैं। यह रूप अर्द्धभावनत जंघा के साथ उत्तेजनात्मक रूप प्रेशित करती है। इस मूर्ति में युवती में सजीवता का भाव है। जो अन्य प्राचीन सभ्यताओं से सर्वथा भिन्न रूप में है। सैन्धव सभ्यता से प्राप्त नर्तकी की मूर्ति एवं ताँवे से बनी अन्य मूर्तियों की ढलाई से यह पता

चलता है कि मधूच्छिश्ट का स्वरूप था। सिन्धु घाटी सभ्यता में ताँबे के द्वारा मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। जिसमें 40 प्रतिषत रंग मिला कर काँसे के रूप मिश्रित धातु बनाई जाती थी। सिन्धु घाटी की मानव मूर्तियाँ के मौलिक लक्षण हैं। सुमेर से मिली मूर्तियों में आँखों की आकृति गोल है। परन्तु हड़प्पा में लम्बी तथा धखुली पलकों से युक्त है। सिन्धु घाटी सभ्यता में मिट्टी की मूर्तियाँ प्रायः बड़ी संख्या में सर्वत्र प्राप्त हुई हैं। मिट्टी से बनी मूर्तियों को बनाने में लाल रंग की गुथी हुई एवं ठोस पकी गई मिट्टी का प्रयोग होता था। मूर्ति बनाने के बाद लाल मिट्टी से पोता जाता था और कभी-कभी चटक रंगों का भी प्रयोग होता था।' साँचे में ढालकर बनाई गई कई मूर्तियों के अपवाद को छोड़कर अधिकतर मूर्तियाँ हाथों से ही बनाई जाती थी तथा खोखली भी थीं।

बड़ी संख्या में मिट्टी की मूर्तियाँ दो प्रकार की हैं -

1. मनुष्य 2. पशु

मनुष्यों की तुलना में पशुओं की मूर्तियों की संख्या अधिक है। नारी मूर्तियों की संख्या पुरुषों से अधिक है। मोहनजोदड़ो में डी. के. क्षेत्र तथा अन्नागार क्षेत्र से पुरुषों की मिट्टी से बनी मूर्तियाँ मिली हैं। इनकी लम्बी नाक, साफ ढोड़ी, पीछे की ओर ढलुआँ रूप में माथा, लम्बी कटावदार आँखें, चिपका सा कठुआ मुख, भौड़ा धड़ आदि विषेशताओं से स्पश्ट करती है कि निर्माण करने वाले; इसमें विषेश रुचि नहीं ली थी। यह मूर्तियाँ या तो धार्मिक या सामान्य सांसारिक मनुश्यों की थीं। कुछ मूर्तियों में सींग भी हैं तथा कुछ सींग वाले मुखौटे या चेहरे भी प्राप्त हुए है। इन्हें साँचों में ढालकर बनाया गया था। इन मूर्तियों की आँखें तिरछी हैं।' नारी मृण्मूर्तियाँ को हड़प्पा, मोहनजोदड़ों चान्हुन्दड़ो आदि स्थलों से प्राप्त किया गया है। हरियाणा के बनावली के अतिरिक्त भारत में राजस्थान, गुजरात आदि सिन्धु सभ्यता के उत्खनन में स्त्री की मृण्मूर्तियों अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं।! विभिन्न आभूषणों से सज्जित इन मूर्तियों के होठ तथा नितम्ब आकर्षक बनाए गये हैं। घुटनों से नीचे का भाग प्राय: नग्न हैं। हाथ से बनाई गई इन मिट्टी की मूर्तियों के आकार में वैविध्य है। इनके अंग-प्रत्यंग, आभूषण आदि गीली मिट्टी द्वारा हाथ से बनाए गये हैं। चुटकी का प्रयोग करके दबाकर नाक बनाई गयी है। तृण की सहायता से आँखें एवं मुख बनाए गये हैं। यदाकदा अलग मिट्टी लेकर चिपकाकर आँखें बनाई गयीं हैं। आभूषणों को ऊपर से मिट्टी द्वारा चिपकाकर बनाया गया है। मूर्तियों के गले में कंठहार, कानों में झुमके, कमर में करधनी को अलग से मिट्टी द्वारा चिपकाकर बनाया गया है। मूर्तियों को बनाने के बाद इन्हें धूप में सुखने के बाद इनको आग में पकाया जाता था। मिट्टी से बनाई गई लगभग तीन चौथाई मूर्तियाँ पशुओं की मिली हैं। इनमें कुकुद्मान, वृशभ विषेश रूप से बनाये गये हैं। किन्तु गाय की एक भी मूर्ति प्राप्त नहीं हुई है।' अन्य पशुओं में हाथी, गैंडा, सुअर, बन्दर, बकरा, भेड़, कछुआ की मूर्ति हैं। मोहनजोदड़ों से प्राप्त वृशभ की बलिश्ठ मूर्ति विशेष रूप

से उत्कृश्ट है। डील वाले बैल की अपेक्षा बिना डीलवाले बैल की मूर्तियाँ अधिक संख्या बनाई गई हैं।* पक्षियों की आकृति में मोर, तोता, कबूतर, मुर्गा, चील तथा उल्लू की मूर्तियाँ मिली हैं। पक्षियों के स्वाभाविक रंगों जैसे ही रंगों से इन्हें रंगने के भी प्रमाण मिले हैं।' स्पश्ट है कि सिन्धु घाटी की कला में मूर्ति निर्माण कला का भी विषेश महत्व रहा है।

प्राचीन भारत में देवी मूर्तियों की प्रमुखता

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में मातृदेवी को उच्च स्थान दिया गया था। अन्य देषों की भाँति भारत में भी मातृदेवी के रूप में देवी-उपासना भी प्राचीन काल से प्रचलित रही थी ।" सिन्धु सभ्यता के प्रमुख केन्द्रों से मिली मिट्टी की मूर्तियों को विद्वानों ने मातृ देवी की पूजा से सम्बन्धित कहा है। इन्हें डीलिया कर बनाया गया है एवं विभिन्न अंगों तथा आभूषणों को अलग से शारीर पर चिपकाया गया है। देवी का मुँख काफी कुरूप है। यदा कदा मुँख पशु अथवा पक्षी के समान है। देवी का अधो भाग पूर्ण रूप से नग्न है। कटि प्रदेष में चौड़ी मेखला के नीचे तथा घुटने के ऊपर का स्कर्ट के जैसा अधोवस्त्र है। आभूषणों के प्रयोग में कंठहार एवं मेखला प्रमुख है। देवी प्राय: खड़ी स्थिति में हैं।! कुछ स्त्री की मिट्टी की मूर्तियों में गर्भिणी रूप तथा मातृत्व के प्रतीक के रूप में शिशु का चित्रण आकर्षक है।' मृण्मूर्तियों को संभवत: धार्मिक उद्देश्य अथवा भेंट के लिए निर्मित किया गया था। मातृदेवी की इस प्रकार मूर्तियाँ विष्व के अन्य देषों- बलूचिस्तान, ईरान, मेसोपोटामिया, एषिया माइनर, बल्कान, सीरिया, क्रीट, मिश्र आदि से मिली हैं। इस रूप में मातृ देवी की पूजा सिन्धु घाटी से लेकर नील की घाटी व उससे भी आगे तक होती थी।* मातृ देवी की मूर्तियाँ सिन्धु घाटी सभ्यता में प्रत्येक घर में दीवारों के आलों में सजाकर पूजी जाती थीं । सिन्धु घाटी सभ्यता की समाप्ति से लेकर मौर्यों के घासन तक एक हजार से अधिक वर्शों तक कोई कलात्मक कृति नहीं प्राप्त नहीं हुई है। यद्यपि आर्यों के भारत आगमन के बाद भारत की धार्मिक परिस्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। वैदिक काल के आरम्भिक काल में क्या प्रतिमा पूजा का विधान था या नहीं? क्या पूर्ववर्ती आर्य मूर्ति पूजक थे या नहीं? इस विशय पर विद्वानों में काफी मतभेद रहे हैं। मैक्समूलर ने कहा है कि वेदों में मूर्ति का कोई स्थान नहीं था। मैकडानल के अनुसार ऋग्वेद काल में मूर्ति पूजन नहीं होता था। लेकिन भारतीय विद्वानों का विचार रहा है कि ऋग्वेद काल में मूर्ति निर्माण कला विद्यमान थी। ऋग्वेद के सूक्तों का आधार मानकर इस मत को पुश्ट किया गया है। ऋग्वेद में अग्नि के सहस्त्र आँख तथा पुरुश के सहस्त्र सिर एवं पैरों की कल्पना की गयी है।

जैन धर्म की मूर्तियाँ

जैन मत की मूर्तियाँ अत्यन्त प्राचीन काल से निर्मित होती रही हैं। मौर्य युग से षुंग काल के मध्य बुद्ध की मूर्ति नहीं मिलती। किन्तु जैन धर्म के सम्बन्ध में ऐसा नहीं है। मौर्य युगीन कलात्मक उदाहरणों में लोहानीपुर

(पटना) से प्राप्त एक नग्न मूर्ति है। इसके प्रस्तर पर मौर्य स्तम्भ का लेख है। यह मूर्ति की प्राचीनता का परिचय देती है। मूर्ति को जैन धर्म में दिगम्बर की मूर्ति माना गया है। जैन मूर्तियों में तीर्थकरों की मूर्तिओं की ही प्रमुखता रही है। जैन धर्म में तीर्थकरों को अरूप ब्रह्म के साकार रूप में आदर दिया गया है। तीर्थंकर को देवाधिदेव के रूप स्वीकार करके जैन शिल्पियों ने इसे प्रमुख स्थान तथा ऐसे लक्षणों से युक्त किया जो तुलनात्मक रूप में तीर्थंकर की प्रमुखता दर्शाता है।

प्राचीन भारतीय मूर्तिकला में विभिन्न हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण

इस क्रम में सर्वप्रथम लक्ष्मी की मूर्ति आती है। हिन्दू देव-समूह में सौभाग्य, समृद्धि, सम्पत्ति एवं ऐष्वर्य की अधिश्ठात्री देवी के रूप में लक्ष्मी का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। श्रीलक्ष्मी की मूर्तियाँ लगभग सम्पूर्ण भारत में सब धर्मों में मान्य रही थीं। ऋग्वेद के खिलसूक्त तथा यजुर्वेद के पुरुष सूक्त तथा भारतीय धर्म साहित्य एवं कला के क्षेत्र में, मुद्राओं पर, खिलौनों में देवी के रूप में श्रीलक्ष्मी का उल्लेख तथा अंकन किया गया है।' महाभारत तथा पुराणों में इनके सन्दर्भ हैं। श्री लक्ष्मी को एक लोकदेवता के रूप में स्थापित किया गया। इनकी मान्यता ऋग्वेद में रही। तदन्तर वर्तमान काल तक चली आ रही है। लक्ष्मी सभी धर्मों में गृहस्थ जीवन की अधिश्ठात्री देवी के रूप पूजित रहीं । वर्तमान में भी हैं।' भारतीय मूर्ति कला में लक्ष्मी के चित्रण षुंग काल से ही मिलते हैं। इस रूप में षुंग युग के सिक्कों एवं मूर्तियों में लक्ष्मी तथा उनके गजलक्ष्मी स्वरूप को दिखाया गया हैं। मुद्राओं पर भी लक्ष्मी को उत्कीर्ण किया जाना प्राचीन भारत में भी होता है। उज्जयिनी (ईसा पूर्व द्वितीय षती) से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर वह कमल पर बैठी है।' पांचाल शासकों जैसे भद्रघोर्शा और फाल्गुनि मित्र की मुद्राओं में पदम पर खड़ी हुई भद्रा तथा फाल्गुनि देवियाँ का अंकन लक्ष्मी रूप में हैं। लक्ष्मी के हाथों में पदम का चिन्ह मथुरा के मित्र राजाओं तथा छत्रपों की मुद्राओं पर प्राप्त हुआ है। गजलक्ष्मी का अंकन कौषाम्बी (ईसा पूर्व तृतीय-द्वितीय षती) जनपद की मुद्राओं पर भी उत्तीर्ण हैं। मूर्तिकला के उदाहरणों में लक्ष्मी एवं गजलक्ष्मी का अंकन भरहुत, सांची, बोधगया, उड़ीसा आदि की बौद्ध तथा जैन कला में भी किया गया है। इंडियन म्यूजियम, कलकत्ता में प्रदर्षित भरहुत की वेदिका स्तम्भ पर अंकित 'सिरिमा देवता' को लक्ष्मी का प्राचीनतम साक्ष्य है।' सिरमा देवता निर्माण कला के लावण्य तथा वस्त्राभूशणों के रूप में वेदिका स्तम्भों पर अंकित अन्य पक्षी चुलकोका, महाकोका आदि स्त्री देवताओं से समानता रखते हैं। संभवतया षुंग युग में लक्ष्मी भी यक्षी रूप में बनाई जाती थीं। लक्ष्मी का विकसित रूप भरहुत की अन्य वेदिका-स्तम्भ पर उत्कीर्ण किया गया है।

कुषाण काल में मूर्ति निर्माण कला

कुषाण काल में महायान सम्प्रदाय की स्थापना के साथ बुद्ध तथा बोधिसत्वों की विविध मूर्तियों के निर्माण का मार्ग प्रपस्त हुआ। मथुरा में पूर्व से ही भागवत धर्म की विविध मूर्तियों के साथ–साथ यक्ष तथा यक्षणियों की मूर्तियाँ बनाई जाती रहीं। मथुरा जनपद में कई स्थानों पर किये गये उत्खनन में यक्ष तथा यक्षियों की अनेक आकृतियाँ मिली हैं। जिनमें मथुरा में परखम, बड़ोदा ग्राम, बेसनगर (भोपाल), ग्वालियर में पद्मावती, पवाया, पटना में दीदारगंज, विदिषा में बेस तथा बेतवा, तथा मेहरौली (दिल्ली) से प्राप्त यह आकृतियाँ प्रमुख हैं। यक्ष को लोक जीवन की परम्परा में लघु देवता के रूप में पूजा जाता था। यक्ष समूह की मूर्तियों के शारीरिक लक्षण अलग हैं। विशालकाय शरीर, अद्भुत वेशभूषा , आभूषण तथा बड़ा पेट जैसी विषेशताऐं यक्ष की मूर्तियों में देखने को मिलती हैं। मथुरा मूर्ति कला केन्द्र पर बुद्ध की मूर्तियों का निर्माण कुशाण काल से प्रारम्भ होता है। इन मूर्तियों को खड़ी तथा बैठी मुद्राओं में बनाया गया। बैठी हुई बुद्ध की मूर्तियों की कतिपय विशिष्टताएं थीं। जैसे बुद्ध के शारीरिक भागों का प्रस्तुतीकरण, प्रभामण्डल, वस्त्र योजना का समायोजन, तथा विविध सामुदिक चिन्हों का प्रदर्षन। मथुरा के निकट के क्षेत्र से उत्खनन में ऐसी मूर्तियाँ मिलीं । कुशाणकालीन बुद्ध की मूर्तियों में गुप्तकालीन बुद्ध की मूर्तियों जैसी कोमलता नहीं है। साथ शारीरिक लावण्य तथा मुख पर भाव बोध उतना सरल, कोमल, स्नेहयुक्त नहीं है। बुद्ध की खड़ी मूर्ति में कुशाण काल के शिल्प तथा विषयवस्तु का प्रत्यक्ष आंकलन किया गया है। मुड़ा हुआ सिर, भौंहों के बीच उर्णा की स्थिति, इत्यादि शारीरिक गुणों से विभूशित है। लाल चित्तीदार पत्थर से बनाई गईं मूर्तियों में पूर्ववर्ती या यक्ष तथा हिन्दू मूर्तियों के शिल्प का प्रश्रय लिया गया है। इस प्रकार से कुशाण काल की बुद्ध मूर्तियों पर लोक कला का प्रभाव भी दिखाई देता है। कुशाण काल में भारत के उत्तर पश्चिम में गन्धार क्षेत्र में भी बुद्ध की अनेक विषाल मूर्तियों का निर्माण किया गया था। इन मूर्तियों यद्यपि कथानकों के प्रदर्शनों में कुछ समानता है। परन्तु शिल्पगत विभेद स्पश्ट दिखाई देता है। शारीरिक भागों का प्रदर्शन भी परस्पर कला केन्द्रों पर भिन्न रहा है। गन्धार क्षेत्र की मूर्ति कला पैली पर विदेषी शिल्प का प्रभाव स्पश्ट रहा। भवन, षक एवं कुशाण, कलाओं के तत्वों का गन्धार कला में समायोजन किया गया है। कुशाण काल की मथुरा तथा गन्धार क्षेत्र की कला ने परस्पर रूप में एक दूसरे को प्रभावित किया था।

उपसंहार

यह शोध पत्र "प्राचीन भारत में मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास" प्राचीन भारतीय सभ्यता में मूर्ति निर्माण कला के महत्वपूर्ण पहलुओं को विश्लेषण करता है। इस अद्वितीय कला रूप का विकास धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक मान्यताओं के प्रतीक के रूप में साझा किया गया है। शोध का मुख्य उद्देश्य प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक के विभिन्न युगों में मूर्ति निर्माण की प्रवृत्तियों के परिवर्तन और प्रगति का अध्ययन करना है। शोध प्रामुख्यता संग्रहीत लेख, प्राचीन ग्रंथों, कला संस्कृतियों और धर्मग्रंथों पर आधारित है। इस पत्र

में हम मूर्तिकला के विकास में शैली, तकनीक, उपयोगिता और साहित्यिक–धार्मिक पहचानों को विश्लेषित करेंगे। यह शोध पत्र प्राचीन भारतीय सभ्यता की मूर्ति निर्माण की कलात्मक प्रवृत्तियों के प्रशंसनीय अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण संसाधन होगा।

सन्दर्भ सूची

1. घास्त्री, केएएस0, सिन्धु सभ्यता का आदि केन्द्र, हड़प्पा, पृ. 75-76
2. अग्रवाल, वासुदेव षरण, भारतीय कला, वाराणसी, 4966, पृ० 25
3. बाशम, ए0एल0, अद्भुत भारत, आगरा, 4997 पृ0 6
4. भारतीय कला, पूर्वोक्त, पृ० 26
5. अद्भुत भारत, पूर्वोक्त, पृ0 46
6. भारतीय कला, वही, पृ० 2
7. अद्भुत भारत, पूर्वोक्त, पृ० 46
8. वही, पूर्वोक्त, पृ० 46
9. भारतीय कला, पूर्वोक्त, पृ० 27
10. वही, पूर्वोक्त, पृ० 28
11. श्रीवास्तव, ए0एल0, भारतीय कला, इलाहाबाद, 2002, पृ0 42
12. वही, पृ0 42
13. वही, पृ० 29
14. भारतीय कला, पूर्वोक्त, पृ० 42
15. भारतीय कला एवं पुरातत्व, पूर्वोक्त, पृ0 46
16. वही, पृ0 45
17. वही, पृ० 46
18. वही, पृ0 66
19. वही, पृ0 66
20. मार्शल, जे0, मोहनजोदड़ो एंड दि इंडस सिविलीजेषन, वा04, लन्दन, 4934, पृ. 49-50